पहेली जीवन की!

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान बड़ा कृपाशील है।"

पहेली जीवन की!

मानव को जीवन मिला है। उसे इस जीवन का अनुभव भी होता है, किन्तु ऐसे लोग कम ही हैं जिन्होंने इस जीवन का गम्भीरतापूर्वक बोध किया हो। साधारणतया मनुष्य एक समतल और ऊपरी स्तर पी जीने और समतल आयाम में आगे बढ़ने के लिए सचेष्ट होता है। उसके जीवन में गहराई के आयाम का लोप ही दीख पड़ता है। ऐसा क्यों है? इसके कुछ जाने-अनजाने कारण हैं।

मनुष्य जिस वातावरण और जिस परिवेश में जीता-जागता है उसमें प्रचलित क्रियाकलापों, भावनाओं आदि का वह कुछ ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि स्वतः उसके पाँव उसकी दिशा में उठने लगते हैं और उसे इसका अवसर ही नहीं मिल पाता कि वह जीवन-सम्बन्धी गहरे और मौलिक प्रश्नों पर विचार कर सके। ऐसी स्थिति में मानव इस ओर से बिलकुल लापरवाह हो जाता है कि वह गम्भीरता के साथ प्राप्त जीवन और जीवन-सम्बन्धी मौलिक प्रश्नों पर विचार करे।

जीवन का अर्थ क्या है?

जीवन का अर्थ क्या है? हम कहाँ से आए हैं और हमें कहाँ जाना है? जीवन और मरण के बीच की इस संक्षिप्त अवधि में हमको क्या करना और क्या बनना चाहिए? जीवन अभिशाप का प्रतिफल है या वरदान का? संयोग है या कोई दायित्व और कर्तव्य? खोज है अथवा खुद से प्राप्त हो जानेवाली चीज़? अपने में पूर्ण है या अपूर्ण? भूमिका है या आदि से अन्त तक सब कुछ? इस जीवन का कोई दाता भी है या नहीं? इन प्रश्नों का उत्तर कहाँ खो गया है? वह कहाँ मिलेगा? कौन देगा? यदि कोई जीवन-दाता है तो उसने इन प्रश्नों का उत्तर भी दिया है या जीवन दान करके उसने चुप रहना ही उचित समझा है?

इन प्रश्नों का मानव-जीवन से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इनको जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। जीवन का प्रादुर्भाव ही इन प्रश्नों के साथ होता है। यही कारण है कि इन प्रश्नों पर मानव सदैव से विचार करता आ रहा है।

जीवन-सम्बन्धी इन प्रश्नों पर सोच-विचार केवल एक दार्शनिक अभिरुचि का विषय नहीं है, बल्कि इसका मानव की जीवन्त इच्छाओं, कामनाओं और

आवश्यकताओं से गहरा सम्बन्ध है। मानव हर चीज़ की उपेक्षा कर सकता है, किन्तु वह अपने मन को कहाँ ले जाएगा?

मानव-मन की प्रबल कामना

मानव-मन की एक प्रबल कामना यह है कि उसके जीवन का अन्त न हो। वह एक ऐसे वसन्त का स्वप्न देखता है जो समाप्त न हो सके। वह धरती में एक बार जागकर सदा-सर्वदा के लिए मिट्टी में विलुप्त हो जाना नहीं चाहता। उसके जीवन का अन्त मृत्यु के रूप में हो, इससे वह सन्तुष्ट नहीं। यही कारण है कि वह मृत्यु के उस पार झाँककर देखना चाहता है और उसके विषय में तरह-तरह की कल्पनाएँ करता है—

इस पार प्रिये मधु है तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा।

जीवन की ख़ुशियाँ उसे कुछ इस प्रकार अपने में व्यस्त कर लेती हैं कि वह यह सोचने के लिए समय नहीं निकाल पाता कि यह जीवन और इसकी ख़ुशियाँ कहाँ से आई हैं और ये कब तक प्राप्त रहेंगी? किन्तु दुःख की प्रकृति कुछ दूसरी होती है। दुःख और कष्ट में वह यह सोचने पर विवश होता है कि यह क्या हो गया? जो ख़ुशी हमें प्राप्त थी वह क्यों छिन गई, क्या वह सदैव के लिए हमसे विलग हो गई? वह कहाँ गई? क्या वह हमें फिर मिल सकती है या नहीं? मानव की यही दुर्बलता है जिसके कारण साधारणतया वह सृष्टि और स्वयं अपने अस्तित्व-स्रोत के विषय में बहुत कम सोचता है। वह इस चिन्ता में नहीं पड़ता कि हमें यह जीवन कैसे, कहाँ से और क्यों मिला, लेकिन जब वह अपने समक्ष अपने प्रियजनों को विवशता के साथ मरते देखता है तो मृत्यु की कड़ुवाहट उसकी ग़फ़लत और बेसुधी की कैफ़ियत को भंग कर देती है और कठोर-से-कठोर हृदयवाले व्यक्ति को भी यह हृदयविदारक दृश्य झकझोर कर रख देता है और मानसिक शान्ति के लिए उसे भी भौतिक पदार्थों के अतिरिक्त किसी अन्य चीज़ की आवश्यकता का आभास हो उठता है।

मृत्यु और दुःख के अवसर पर कई अन्य गम्भीर बातों की ओर भी हमारा ध्यान जाता है, यह स्वाभाविक भी है। साधारणतया हमारी ज्ञानशक्ति पर जड़ता

के पर्दे पड़ जाते हैं और हम जीवन की गहन समस्याओं और गहन विषयों की ओर ध्यान ही नहीं देते। दुःख जड़ता के परदों को फाड़ देता है। यही कारण है कि हम जीवन को गम्भीर रूप से दुःख और वेदना के द्वारा ही देख पाते हैं, सुख और आराम के माध्यम से नहीं। संवेदनशील व्यक्ति जानते हैं कि संसार में सारे सुखों और सुविधाओं के बावजूद आदमी की अनगिनत इच्छाएँ और कामनाएँ हैं जो पूरी नहीं होतीं। उसकी कितनी ही कामनाएँ और अभिलाषाएँ तो ऐसी उत्तम एवं आकर्षक होती हैं कि मानव-प्रकृति उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। उनका पूरा न होना अत्यन्त दुःखद प्रतीत होता है।

अपने प्रियजनों का अपने से बिछड़ जाना और सदैव के लिए बिछड़ जाना एक ऐसी हृदयविदारक घटना है जो हमारे धैर्य को नष्ट कर देती है। उनकी ओर से सदैव के लिए निराश हो जाना मनुष्य को ऐसा अपंग कर देता है कि वह अपनी जगह पर तड़पकर रह जाता है। उसका अन्तर्मन यह मानने को तैयार नहीं होता कि जानेवाला सदैव के लिए उससे दूर हो रहा है। अपनी आँखों के सामने सब कुछ होते हुए देखकर भी अचेतन रूप में पुनः मिलन की आशा बनी ही रहती है।

भलाई और बुराई में अन्तर क्या है?

कितने ही लोग मिलेंगे जो नेकी और भलाई में लगे रहते हैं। उनकी क़ुरबानी और उत्सर्ग महान् होता है। किन्तु उनके हिस्से में दुःख और अनादार के अतिरिक्त कुछ नहीं आ पाता। इसके विपरीत कितने दुर्जन जीवनभर अपनी दुष्टता से लोगों को सताते और उनकी आहें बटोरते रहते हैं। उनके कारण मानव-जगत् में भयंकर आतंक और बिगाड़ पैदा होता है। वे बुराई के ऐसे बीज बो जाते हैं कि शताब्दियों तक लोगों को उनके विषैले फल चखने पड़ते हैं। उनके अत्याचार और अनाचार से जनता कराह उठती है और उसकी हृदयविदारक आवाज़ बहुत ज़माने तक सुनाई देती रहती है। किन्तु वे होते हैं कि सुख और आनन्द का जीवन बिताते हैं। उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती। ऐसे अवसर पर एक विचारशील व्यक्ति यह सोचने लगता है कि आख़िर वह क्या देख रहा है! क्या पुण्यात्माओं को अपनी सेवाओं का कोई फल न मिल सकेगा? क्या संसार में गुणग्राहकता की भावना केवल एक धोखा है? क्या पाप और पुण्य,

भलाई और बुराई, सेवा और अत्याचार में सिरे से कोई तात्विक और प्रभावकारी अन्तर ही नहीं है? क्या पुण्य में इतनी अपुण्यता है कि वह अपने कर्त्ता को सिरे से भुलाकर सन्तुष्ट हो जाए?

क्या संसार सदैव चलता रहेगा?

फिर विचारशील व्यक्ति के मन में यह प्रश्न भी पैदा होता है कि यह संसार क्या सदैव चलता रहेगा? वह देखता है कि यहाँ एक तरफ़ मनुष्य मरता है, तो दूसरी तरफ़ मानवों के पैदा होने का क्रम चल रहा है। एक जाता है तो दूसरा उसका स्थान ग्रहण करता है। यही हाल पशु-पक्षी और वृक्ष आदि का भी है। उनकी भी नस्ल चल रही है जिसके कारण संसार निर्जन और उजाड़ लोक नहीं बन पाता और लोगों को इसका आभास नहीं हो पाता कि उनसे कुछ छीना गया है। यद्यपि संसार-का-संसार इस जगत् से प्रस्थान कर चुका है। उसे दुनिया आबाद-की-आबाद ही दिखाई देती है। यहाँ के क्रियाकलाप और चहल-पहल में कोई अन्तर नहीं आता। लेकिन क्या यह क्रम यूँ ही जारी रहेगा? क्या लोग इसी प्रकार मरते-जीते रहेंगे? क्या यह क्रम कहीं पहुँचकर कभी समाप्त भी होगा? क्या वायु, जल, प्रकाश, ऊर्जा आदि भौतिक शक्तियाँ कभी क्षीण या समाप्त न हो सकेंगी? क्या ब्रह्माण्ड की व्यवस्था ऐसी ही बनी रहेगी या इसकी भी कोई निश्चित आयु या अवधि है? यदि इसकी कोई निश्चित आयु है जिसे पूरा करके वर्तमान लोक और इसकी व्यवस्था का अन्त हो जाएगा, तो क्या उसके पश्चात् केवल सन्नाटा रहेगा? क्या जगत् की क्रियाशील ऊर्जा शून्य में विलीन होकर रह जाएगी और किसी नए जीवन या नए संसार का शुभारम्भ न होगा क्या यह मनोरम खेल सदैव के लिए समाप्त हो जाएगा, और फिर कोई भी न होगा जिसे यह मालूम हो कि कभी कहीं कोई सूर्य उगा था या कभी कोई धरा उभरी थी जो अपने साथ जीवन की कितनी ही मनोरम कहानियाँ— राग-विराग और रुदन और हास्य लिए हुए— सदैव के लिए विलुप्त हो गई?

या यह कि इस संसार के अन्त होने के पश्चात् कोई अन्य समुन्नत या निम्न कोटि का संसार उभरेगा? यदि उभरेगा तो क्या वर्तमान लोक के प्राणी उसमें प्रवेश पा सकेंगे, या वह दूसरे ही लोगों का आवास होगा? यदि इस लोक के लोगों को उस लोक में प्रवेश मिलता है तो क्या उनका वह जीवन उनके

वर्तमान जीवन का किसी पहलू से ऋणी होगा? दूसरे शब्दों में उस जीवन के सुन्दर-असुन्दर होने में हमारे अच्छे-बुरे विचार, भाव, कर्म आदि का भी हाथ होगा या नहीं?

महत्त्वपूर्ण प्रश्न!

ये और इस प्रकार के कितने ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जो मानव-मन में पैदा होते हैं, फिर वे या तो यूँ ही भटककर रह जाते हैं या उनका समाधान होता है या फिर मनुष्य उनका सन्तोषजनक उत्तर न पाकर निराश हो जाता है। उसकी मनोवृत्ति वह हो जाती है जो किसी निराशाग्रस्त व्यक्ति की होनी चाहिए। निराशाजनित मनोवृत्ति के कारण संसार में जो कुछ और जैसा कुछ है मनुष्य उससे समझौता कर लेता है और इसी वर्तमान जीवन और जगत् को प्रथम और अन्तिम सब कुछ समझ बैठता है इसी के अनुसार उसका जीवन अपना आकार-प्रकार ग्रहण करता है। वह यहाँ के सुख और दुःख को अन्तिम सुख-दुःख जानता है। यहीं की नेकनामी और यश को यश समझता है और यहीं के अपयश को अपयश। उसकी दृष्टि में यहाँ के यश-अपयश के अतिरिक्त कहीं कोई और यश-अपयश का ठौर नहीं होता।

भविष्य की ओर से निराश होने के पश्चात् भी मनुष्य की समस्या का अन्त नहीं हो जाता। यह मान लेने या समझ लेने के पश्चात् कि आगे कुछ नहीं है, यह प्रश्न शेष ही रहता है और अपने उत्तर की माँग करता रहता है कि सद्भावना और पुण्य क्या काल्पनिक वस्तु समझ ली जाएँ? यहाँ धन-सम्पत्ति के मूल्यवान होने में किसी को सन्देह नहीं होता, किन्तु प्रेम, सद्भावना, सहानुभूति, दया, सत्कर्म आदि शून्य में विलुप्त होनेवाली वस्तुएँ प्रतीत होती हैं। उस लोक का मामला क्या भिन्न होगा? यह भिन्नता वर्तमान लोक का विरोधात्मक रूप न होकर क्या विकासात्मक होगी?

सत्य-असत्य

अब हम उपरोक्त विषय को लेकर कुछ विस्तार में जाना चाहेंगे ताकि जो सत्य है वह ग्राह्य हो सके और असत्य का असत्य होना स्पष्ट हो जाए। इस सम्बन्ध में सबसे पहले हमें यह देखना है कि जीवन का स्रोत कहाँ है? यह संसार और इसमें पाए जानेवाले प्राणियों और वनस्पतियों को नाना प्रकार से सुसज्जित

करनेवाली शक्ति और इरादा (Mind) कौन-सा है? सारांश यह कि मनुष्य के लिए यह प्रश्न कुछ कम गम्भीर नहीं है कि यदि वर्तमान जीवन के अतिरिक्त उसका कोई भविष्य न भी हो तो भी आज वह कहाँ खड़ा हो? उसका कोई शाश्वत और चिरस्थायी भविष्य न भी हो, जिसके कारण उसकी व्याख्या करने के भार से वह मुक्त हो, तब भी वर्तमान जो एक वास्तविकता है उससे वह कैसे पीछा छुड़ा सकता है? वर्तमान की व्याख्या तो उसे करनी ही पड़ेगी। इसकी व्याख्या के बिना वह अपने को सन्तुष्ट कैसे कर सकता है। यही कारण है कि जब डार्विन ने विकासवाद (Evolution) का सिद्धान्त प्रस्तुत किया तो उसे बड़ा महत्त्व प्राप्त हुआ। कारण यह था कि उसके सिद्धान्त की हैसियत जगत् और जीवन की व्याख्या की थी जिसमें जीवन की पहेली को हल करने का दावा किया गया था। इसलिए चेतन अथवा अचेतन रूप से डार्विन के कार्य से लोगों का भावात्मक सम्बन्ध पाया जाता था। यद्यपि डार्विन के सिद्धान्त में त्रुटियाँ मौजूद थीं, लेकिन प्रारम्भ में उनकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया, इसलिए कि यह मानव का स्वभाव है कि वह नहीं चाहेगा कि धातु का टुकड़ा, जिसे उसने सोना समझकर उठाया है, पीतल निकले। यही कारण है कि डार्विन के सिद्धान्त या उसकी परिकल्पना (Theory) की पुष्टि के लिए बड़ा ज़ोर लगाया गया और कितने ही वैज्ञानिकों ने इसके लिए अपने बहुमूल्य समय और शक्ति की आहुति दी और आज भी इसके लिए बहुत-से यत्नों और अनुसन्धानों का क्रम चल रहा है।

परलोक की कल्पना

इस्लाम एक प्रकार से उन मौलिक प्रश्नों का सुस्पष्ट उत्तर है जो जगत् और जीवन के सम्बन्ध में पैदा होते हैं, जिनकी ओर हम ऊपर संकेत कर चुके हैं। जीवन सम्बन्धी मौलिक प्रश्नों का इस्लाम अत्यन्त आशाजनक उत्तर बनकर हमारे समक्ष आता है। अतः वह हमारी उपेक्षा का नहीं, अपितु हमारे ध्यान और चिन्तन और अनुभूति का विषय बन जाता है। इस्लामी शिक्षा के अनुसार यह संसार एक चेतन सत्ता की रचना है। यह रचना यूँ ही नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक महान् उद्देश्य काम कर रहा है। इसका एक निश्चित लक्ष्य है जिसकी पूर्ति के लिए जगत् सचेष्ट एवं कार्यरत है। जगत् तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। कोई नहीं जो उसे उस अवस्था को प्राप्त होने से रोक सके जिसे

प्राप्त करने के लिए वह गतिमान है। जगत् की प्रकृति और स्वभाव और उसमें निहित मूल प्रयोजन को बदल देना मानव के अधिकार-क्षेत्र से बाहर की चीज़ है।

इस्लाम बताता है कि रचना होने के कारण जगत् का आरम्भ भी है और उद्देश्ययुक्त होने के कारण इस जगत् में एक महान् परिवर्तन भी होनेवाला है। उस परिवर्तन को हम चाहे चरम विकास का नाम दें या उसे निर्माणात्मक सृजन की उपाधि से विभूषित करें, किन्तु जिस प्रकार प्रत्येक महान निर्माण-कार्य से पहले विध्वंस का होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार उस विकसित और पूर्णताप्राप्त जगत् के निर्मित होने से पूर्व वर्तमान जगत् का पतन और विनाश अनिवार्य है। एक प्रलयकारी घटना घटकर रहेगी जिसके फलस्वरूप वर्तमान विश्व की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। उसके पश्चात् नव-सृजन का समय आएगा, जबकि एक ऐसा संसार हमारे सामने होगा जो वर्तमान संसार से कई पहलुओं से भिन्न होगा। वर्तमान लोक में जो न्यूनताएँ और त्रुटियाँ पाई जाती हैं, वे उसमें शेष नहीं रहेंगी। वह विकास और सृजनता की चरम एवं परम स्थिति होगी जिसे देखकर प्रत्येक व्यक्ति यह समझ लेगा कि यह वह लोक है जो यद्यपि हमारी निगाहों से ओझल था, किन्तु बिगत जगत् इसी की ओर बढ़ रहा था और उसका प्रत्येक संकेत इसी ओर था। इस तक पहुँचना और पहुँचाना ही उसका मुख्य ध्येय था।

जिस प्रकार समुद्र को देख लेने के पश्चात् उस जल और आर्द्रता का रहस्य खुल जाता है जो नदियों, तालाबों, पेड़-पौधों और मानव-शरीर में विद्यमान या प्रवाहित होती है उसी प्रकार उस लोक के सामने आने के बाद एक ओर हमें वर्तमान जगत् के उद्गम और आधार का पता लग जाएगा, दूसरी ओर हमें जगत् के मूल उद्देश्य एवं अभिप्राय का तात्विक-ज्ञान भी क्रियात्मक रूप से हो जाएगा। मन के सारे संशय दूर हो जाएँगे। हमारी आज की असमर्थता समर्थता में बदल जाएगी। जो चीज़ें आज निगाहों से ओझल हैं, वे हमारे लिए प्रत्यक्ष होंगी। जो होना चाहिए वहाँ वही होगा और जो अनिष्ट है उसका आविर्भाव वहाँ सम्भव न हो सकेगा।

उदाहरणार्थ आज भौतिक वस्तुएँ ही साधारणतया आकर्षक प्रतीत होती हैं। सूक्ष्म और अदैहिक वस्तुओं की अवहेलना कर दी जाती है। यहाँ शरीर का तो मूल्य समझ में आ जाता है, किन्तु आत्मा और प्रेम अदृश्य ही रहते हैं!

सतर्कता की आवश्यकता

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे यह स्पष्ट होता है कि क़ुरआन ने संसार और मानव-जीवन के परिणाम के प्रति जो सूचना दी है, वह क्या है? उपरोक्त विवेचन से यह बात खुलकर हमारे सामने आ जाती है कि इस संसार और वर्तमान जीवन का क्या होनेवाला है। क़ुरआन ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि जगत् और मानव शून्य और सर्वथा लोप (Nothingness) की ओर नहीं, बल्कि एक विकसित और परिपूर्ण लोक और जीवन की ओर अग्रसर हैं।

मानव की स्थिति अत्यन्त नाज़ुक और गम्भीर है। इसलिए कि उसका पारलौकिक जीवन वैसा ही होगा जैसा उसे बनाने की उसने कोशिश की होगी। वर्तमान जीवन अपनी वास्तविकता की दृष्टि से एक कोशिश और प्रयास है जिसके अनुसार मानव का भावी और सार्वकालिक जीवन संगठित एवं सृजित होगा। लौकिक जीवन में मिलनेवाले सुख या लाभ और सुविधाएँ वास्तव में गौण और नगण्य हैं। अतः सच्चाई को जानने में किसी प्रकार का विलम्ब न होने देना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमारी साधारण असावधानी भी साधारण नहीं है।

बुद्धिमान वही है जो आज ही सजग और सर्तक हो जाए और जीवन की सम्भावनाओं पर विचार करे और उस चेतावनी पर ध्यान दे जो चेतावनी उसे ईश्वर की ओर से मिलती रही है, और ईश्वर प्रेषित अन्तिम ग्रन्थ क़ुरआन भी जिसकी चेतावनी मानव को दे रहा है।

यहाँ यह स्पष्ट रहे कि क़ुरआन मानव के लिए चेतावनी भी है और मंगल-सूचना भी। वह उन व्यक्तियों के लिए ख़ुशख़बरी और मंगल-सूचना बनकर उतरा है जो उसकी बातों पर ध्यान देते और जीवन को उसके वास्तविक रूप में स्वीकार करके मरने के बाद आनेवाले जीवन की तैयारी में जुट जाते और अपना दायित्व निभाते हैं, किन्तु क़ुरआन इसी के साथ उन लोगों के लिए डरावा और चेतावनी भी है जो उसकी आवाज़ पर ध्यान न देकर जीवन की अवहेलना करते और अपने दायित्व की ओर से मुख मोड़े रहते हैं।

परलोक के सम्बन्ध में क़ुरआन ने जो धारणा प्रस्तुत की है वह मात्र दर्शन नहीं है, बल्कि उसका हमारे वर्तमान और भावी जीवन से गहरा सम्बन्ध है। 'आख़िरत' या परलोक को मानने के बाद मनुष्य के जीवन का रुख़ और उसकी

आत्मा उस जीवन-दिशा और आत्मा से नितान्त भिन्न हो जाती है जो परलोक को अस्वीकार करने के बाद होती है। इस सिलसिले में हम बीच की कोई राह भी नहीं अपना सकते कि परलोक का न तो इनकार करें और न उसे स्वीकार करें, बल्कि परलोक के विषय में मौन रहें। इसलिए कि परलोक के विषय में यदि अपनी कोई धारणा न भी बनाएँ फिर भी परिणाम की दृष्टि से हमारा जीवन और जीवन की चेष्टाएँ स्वभावतः वैसी ही होंगी जैसी परलोक को अस्वीकार करने की दशा में हो सकती हैं। हम परलोक या 'आख़िरत' के प्रति जब अपनी कोई धारणा नहीं बनाएँगे तो स्पष्ट है कि हम परलोक की सफलता के लिए प्रयत्नशील भी न हो सकेंगे। अब यदि पारलौकिक जीवन सत्य है तो हम परलोक के बुरे परिणामों से अपने-आप को कैसे बचा सकेंगे। अतः हम अनिवार्यतः इस विषय पर विचार करने को बाध्य हैं।

सोचने की बात

परलोक की धारणा, जैसा कि उपरोक्त विवेचन से विदित होता है, अत्यन्त तर्कसंगत धारणा है। इस धारणा में ऐसी कोई बात नहीं है जो बुद्धि और तर्क के विपरीत हो। किसी लोक की धारणा या कल्पना कोई ऐसी चीज़ भी नहीं जिससे मनुष्य बिल्कुल ही अपरिचित हो। वर्तमान लोक स्वयं एक ऐसा-लोक है जिसमें मानव आज साँस ले रहा है। यह आश्चर्य की बात होगी कि मानव लोक में रहकर लोक का इनकार करे, दुनिया में रहकर दुनिया को न माने।

सोचने की बात है कि यदि इस दुनिया के अतिरिक्त कोई दूसरी दुनिया सम्भव नहीं है, तो यह दुनिया ही कैसे सम्भव हो सकी। क्या बच्चे को हम नहीं देखते कि वह सदैव बच्चा ही नहीं रहता, वह युवक भी होता है। फिर यदि यह संसार किसी निश्चित समय पर अन्य कोई विकसित रूप धारण करनेवाला हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या। यह क्यों सम्भव नहीं हो सकता कि एक समय ऐसा आए जब गतिशील जगत् के कार्य-प्रक्रम का विशिष्ट चरण पूरा हो और जगत् का दूसरा पहलू हमारे सामने आ जाए, ठीक उसी प्रकार जैसे रात बीत जाने के पश्चात् दिन की रौशनी चारों ओर फैल जाती है और ऐसा लगता है जैसे संसार ही बदल गया। हालाँकि हम भी वही होते हैं और दुनिया भी वही होती है, किन्तु मात्र प्रकाश की अभिवृद्धि हो जाती है। दिन के प्रकाश में वे सभी चीज़ें दिखने

लगती हैं जो रात के अन्धेरे में छिपी हुई थीं। रात के अन्धेरे में पर्वत तक छिप जाते हैं और दिन में हमें तिनका तक दिखाई दे जाता है।

जब सूर्य के प्रकाश में धरती के आ जाने से संसार में एक महान् परिवर्तन होता है, तो किसी ऐसे आलोक की कल्पना क्यों नहीं की जा सकती जिसके कारण संसार में सदैव के लिए अज्ञान, दुख, अन्याय, अपूर्णता आदि न्यूनताओं का अन्धकार दूर हो जाए! लोग ऐसे प्रकाश में आ जाएँ जहाँ हमसे कुछ भी ओझल न रहे और लोग सच्चाई और वास्तविकता को स्पष्टतः देख लें। क़ुरआन में है-

> "और जगमगा उठेगी धरती (क़ियामत के दिन) अपने 'रब' के प्रकाश से; और (लाकर) रख दी जाएगी किताब (लेखा-जोखा) और पैग़म्बरों और गवाहों को लाया जाएगा और लोगों के बीच हक़ के साथ ठीक-ठीक फ़ैसला कर दिया जाएगा, और उनपर कोई ज़ुल्म न होगा।" (क़ुरआन, 39 : 69)

दुनिया में विभिन्न मत-मतान्तर पाए जाते हैं। लोग तरह-तरह के भले-बुरे कर्मों में लगे हुए हैं। इसका वास्तविक कारण यही है कि जगत् और जीवन की वास्तविकता का रहस्य इस प्रकार प्रकट नहीं है कि आदमी उसके विरुद्ध सोच ही न सके और न उसके विरुद्ध कोई काम कर सके।

जगत् और जीवन के विषय में सामान्यतः मानव बहुत थोड़ा जानता है। कितने ही ऐसे रहस्य हैं जो अभी प्रत्यक्ष रूप से प्रकाश में नहीं आ सके हैं। अपनी विचार-शक्ति से मानव को यह स्वीकार करना पड़ा है कि उसे जितना ज्ञात है उससे कहीं अधिक अभी उसके लिए अज्ञात ही है। क़ुरआन मानव की अल्पज्ञता को स्पष्ट करते हुए कहता है—

> "और तुम्हें बस थोड़ा ही ज्ञान दिया गया है।"
>
> (क़ुरआन, 17 : 85)

मनुष्य के ज्ञान का हाल यह है कि ठोस पदार्थ का भी केवल तीन प्रतिशत अंश ही वह देख पाता है। वास्तविकता उतनी ही नहीं है जितना हम देख पाते हैं। वस्तुओं की व्याख्या और विश्लेषण (Interpretaion & Analysis) सम्भव नहीं जब तक हम उनमें कुछ और चीज़ें न जोड़ें जो हमारे लिए अदृश्य हैं।

तर्कसंगत धारणा

किसी भी धारणा को ग्रहण करने का उचित मार्ग या विशुद्ध पद्धति क्या हो सकती है?

हम जानते हैं कि हमारे पास केवल देखने, सुनने, स्पर्श करने आदि के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ ही नहीं हैं, बल्कि हमें सोच-विचार करने की अपार शक्ति भी मिली है। यही कारण है कि मानव सदैव से भौतिक एवं आभासित जगत् की परिधि का बन्दी बनकर रहने से इनकार करता रहा है। वह स्वभावतः यह चाहता है कि अपनी चिन्तन-शक्ति को काम में लाए और उन अन्तर्निहित रहस्यों को मालूम करे जिन को हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ छू नहीं पातीं। चिन्तन का एक तरीक़ा तो यह हो सकता है कि हम बाह्य जगत् की ओर से आँखें बन्द करके केवल कल्पना लोक में विचरण करें और ऐसी धारणा बनाएँ जिनका आधार अटकल और अनुमान के सिवा और कुछ न हो। यह विचार-पद्धति सर्वथा भ्रामक और भटकानेवाली है। इसके द्वारा हम जिन धारणाओं का निर्धारण करेंगे उनपर कदापि भरोसा नहीं किया जा सकता। यह तो केवल अन्धेरे में तीर चलाना है जिसमें ज़रूरी नहीं कि तीर निशाने पर ही पड़े।

इसके विपरीत एक दूसरी विचार-पद्धति भी है और वह यह है कि हम खुली आँखों से जगत् में और स्वयं अपने-आप में ऐसे तत्त्वों और चिह्नों को खोजें जो वास्तविकता के समझने में हमारे सहायक हो सकते हों। यदि ऐसे चिह्न हमें प्राप्त हों तो वे हमारे लिए ऐसे चिराग़ सिद्ध हो सकते हैं जिनको लेकर हम अपनी चिन्तन शक्ति और बुद्धि की सहायता से उन वास्तविकताओं तक पहुँच सकते हैं जिन्हें मानव जानना चाहता है। बरट्रेण्ड रसेल ने भी इस विचार-पद्धति की अपनी पुस्तक 'ह्यूमन नॉलेज' (Human Knowledge) में पुष्टि की है। इस पद्धति को अवैज्ञानिक समझना सही नहीं है। किसी तथ्य का ऐन्द्रिक साक्षात्कार सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि विज्ञान-जगत् में भी जिन सिद्धान्तों को मान्यता प्राप्त है उनका किसी ने ऐन्द्रिक निरीक्षण नहीं किया है। प्रत्येक वैज्ञानिक धारणा या सिद्धान्त एक प्रकार का निष्कर्ष है जिस तक विज्ञानवेत्ता जगत् में घटित होनेवाली घटनाओं और जगत् में पाए जानेवाले विशेष चिह्नों पर सोच-विचार और चिन्तन करके पहुँचे हैं। गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) का नियम

हो, या कार्य-कारण की शृंखला या सापेक्षता (Relativity) की धारणा हो, इनमें से किसी को भी प्रत्यक्ष ऐन्द्रिक निरीक्षण के द्वारा नहीं स्वीकार किया गया है, बल्कि ये समस्त सिद्धान्त वास्तव में विचार-शक्ति द्वारा ही निर्धारित किए गए हैं। जिस सामग्री सिद्धान्त के आधार पर मानव की विचार-शक्ति ने इन सिद्धान्तों की खोज की है, वह किसी कल्पना-लोक से नहीं जुटाई गई है, बल्कि वह इसी भौतिक जगत् ही का अंग है, वर्तमान जगत् के लिए वह कोई विजातीय (haterogeneous) तत्त्व नहीं है।

क़ुरआन विचार और वास्तविकता के प्रमाणीकरण की इसी वैज्ञानिक पद्धति की पुष्टि करता है। क़ुरआन की दृष्टि में भी मानव को इतनी शक्ति तो प्राप्त नहीं है कि वह उन वास्तविकताओं को प्रत्यक्षतः देख सके जो उसकी इन्द्रियों से छिपी हुई हैं, किन्तु यदि वह ब्रह्माण्ड में पाए जानेवाले विशिष्ट चिह्नों और लक्षणों का खुली आँखों से निरीक्षण करे और स्वयं अपने व्यक्तित्व और अपने जन्म के बारे में विचार करे और इस प्रकार उन विशेष लक्षणों और निशानियों को, जो सत्य के समझने में सहायक प्रतीत हों, एकत्र करके उन्हें सुनियोजित ढंग से क्रम में रखकर देखे कि इससे क्या निष्कर्ष निकलता है, तो इस प्रकार वह सत्य के अधिक निकट पहुँच सकता है। इस प्रकार उसे सत्य की अनुभूति भी हो सकती है और वह सच्चाई जो साधारणतया प्रतीत नहीं होती उसे वह आभासित रूप में देखने की स्थिति में हो जाएगा। क़ुरआन में है—

> "आकाशों और धरती में कितनी ही निशानियाँ हैं जिनपर से उनका गुज़र होता है और वे उनपर कुछ ध्यान नहीं देते।"
>
> (क़ुरआन, 12 : 105)

> "क्या उन्होंने आकाशों और धरती के राज्य (शासन एवं नियन्त्रण) पर और जो कुछ अल्लाह ने पैदा किया है उसपर दृष्टि नहीं डाली?" (क़ुरआन, 7 : 185)

> "हम उन्हें अपनी निशानियाँ दिखाएँगे बाह्य जगत् में और स्वयं उनकी आत्माओं में, यहाँ तक कि उनपर स्पष्ट हो जाए कि यह (क़ुरआन) सत्य है।" (क़ुरआन, 41 : 53)

जीवन का उद्देश्य महान

जगत में जो पूर्ण सुव्यवस्था पाई जाती है और उसमें जो नियम काम करते दिखाई देते हैं उनसे स्पष्टतः विदित होता है कि वर्तमान जगत का निर्माण किसी उच्च और गम्भीर उद्देश्य के अन्तर्गत हुआ है और अनिवार्यतः इसका कोई स्रष्टा और नियन्ता है। जगत के निर्माण में अपार शक्ति, दया, ज्ञान और तत्त्वदर्शिता परिलक्षित होती है। अब यह सम्भव नहीं कि शक्ति तो दिखाई दे किन्तु कोई शक्तिमान सत्ता न हो। ज्ञान तो हो लेकिन कोई ज्ञान-दाता न हो। अनुग्रह या दया तो हो किन्तु यह अनुग्रह और दया बिना किसी अनुग्रहकर्ता और दयावान के हो। इस बात को तो कोई ऐसा व्यक्ति ही स्वीकार कर सकता है जो बुद्धिहीन और विवेक शून्य हो। आदमी तनिक भी बुद्धि से काम ले तो उसे यह मानना पड़ेगा कि जगत और जीवन का अस्तित्व एक जीवन्त और सर्वशक्तिमान ईश्वर के अभाव में सम्भव नहीं हो सकता।

रही बात मानव की, वह तो जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसका जीवन निरुद्देश्य नहीं हो सकता। ईश्वर से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह विशाल जगत का निर्माण करे और उसमें मनुष्य को विशिष्ट स्थान प्रदान करे। उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्ण व्यवस्था करे और व्यवस्था भी ऐसी कि सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र आदि सभी उस व्यवस्था के अंग-प्रति अंग हों और वह मनुष्य के जीवन को निरुद्देश्य रखें। यदि यह बात मान ली जाए फिर तो जीवन और जगत सब बच्चों का खेल होकर रह जाएगा। बच्चे खिलौनों से खेलते हैं और खेल से जी भर जाने पर अपने खिलौनों को नष्ट भी कर सकते हैं।

मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है अतः उसके जीवन का उद्देश्य महान और सुन्दर होगा। उसकी जीवन-यात्रा की मंज़िल आकर्षक और शाश्वत होगी। वहाँ सब कुछ प्राप्त होगा जो जीवन को अभीष्ट है। वहाँ अत्यन्त सुख-सुविधा की व्यवस्था होगी। वहाँ कुछ पाना शेष न रहेगा। वहाँ सबसे आनन्द की चीज़ यह होगी कि प्रभु वहाँ अपने प्रियजनों को अपने दर्शन देगा। उन्हें उसका सामीप्य प्राप्त होगा। वे अत्यन्त हर्षित होंगे। उन्हें ईश्वर से प्रत्यक्षतः बातें करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

इसके विपरीत जो लोग ईश्वर की योजना की उपेक्षा करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे और उसके आदेशों और उसकी इच्छा का अनादर करेंगे वे अपमान जनक यातना के भागी होंगे। ईश्वर के सामीप्य से वे वंचित होंगे। ईश्वर के प्यार और अनुग्रह के पात्र तो वही लोग होंगे जो ईश्वर के आज्ञाकारी होंगे।

मनुष्य की नियति का बड़ा भाग परोक्ष से सम्बन्ध रखता है। परोक्ष हमारे जीवन में सम्मिलित है। जीवन और जगत किसी परिणाम की ओर बढ़ रहे हैं। इसका इनकार नहीं किया जा सकता। इसके सत्य होने के पक्ष में सम्पूर्ण जगत है। इसके सत्य होने के प्रमाण हर तरफ़ बिखरे हुए हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर ने अपने पैग़म्बरों के माध्यम से अपनी वाणी अवतरित करे के परोक्ष सम्बन्धी बातों की हमें सूचना भी दे दी। इस सूचना ने उन संकेतों और प्रमाणों के निर्दोष होने की पूर्ण रूप से पुष्टि कर दी। अब इसके बाद भी कोई सत्य की अवहेलना करता है, तो इसे आप क्या कहेंगे? क्या यह ईश्वरीय सूचनाओं और स्वयं ईश्वर का अनादर न होगा। क्या ऐसा व्यक्ति ईश्वर का कृपा-पात्र हो सकता है। कदापि नहीं। वह तो ऐसा अपराधी है कि उसके अपराध का भयावह परिणाम उसके समक्ष आ कर रहेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को गम्भीरतापूर्वक इस पर विचार करना चाहिए कि वह अपने लिए क्या पसन्द करता है।

उद्देश्यपूर्ण जीवन और शाश्वत आनन्द

या

निरुद्देश्य जीवन और शाश्वत यातना एवं सन्ताप

अपने लिए यह फ़ैसला स्वयं आप ही को करना होगा।

जीवन की इस पहेली को हल करने के लिए हमें अवश्य ही समय निकालना चाहिए। इस सम्बन्ध में इस्लाम का मार्गदर्शन हमारे लिए अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा।

———◈———